© INNOVATIVE RESEARCH THOUGHTS | Refereed | Peer Reviewed | Indexed
ISSN : 2454 – 308X | Volume : 04 , Issue : 01 | January – March 2018

# हिन्दी–कहानियों में नारी की बदलती मानसिकता

**डा. सुदेश कुमारी, हिन्दी प्राध्यापिका**

ISSN 2454-308X
9 770024 543081

आज की नारी पहले समाज में स्वयं को प्रतिष्ठित करती है, बाद में किसी रिश्ते में बँधकर उसके अनुसार चलती है। अतः दूसरों के साथ सारे संबंध स्वार्थ पर आधारित है। दिखावे और स्वार्थ पर आधारित संबंधों में मधुरता लुप्त होती है। अब नारी अपने जीवन का फैसला अपनी इच्छा से करके, बंधनों से मुक्त होकर अपनी शैली से जीने में विश्वास रखती है और इसी के लिए वह निरंतर संघर्ष करती है। इसी संघर्ष–भावना से उसकी मानसिकता, उसकी सोच तथा उसके जीवन के मूल्यों में परिवर्तन आया है।

बहुधा यही कहा सुना जाता है कि पुरूषवर्ग इनकी भावनाओं का सम्मान नहीं करता, लेकिन यथार्थ में, पुरूषों से अधिक ऐसी महिलाएँ मिलेंगी, जो स्वयं महिलाओं को कष्ट एवं हानि पहुँचाती रहती हैं। यह नारी–जीवन की सबसे बड़ी समस्या है, जिसकी चर्चा बहुत ही कम होती है क्योंकि यह समस्या समाज की चमड़ी पर न होकर समाज के आंतरिक शरीर में है। 'महिलाएँ ही महिलाओं की सबसे बड़ी शत्रु हैं। बहुतेरे लोगो का यह कहना है।'[1]

भारतीय संदर्भ में घरेलू महिलाओं की संख्या सर्वाधिक है। इनका जीवन सीमित है। श्रद्धा, व्रत, पूजा–पाठ, दान–पुण्य, चूल्हा–चौका, बच्चों का लालन–पालन, पति के लिए न्यौछावर होना, बुजुर्गो की सेवा में अपना भविष्य होम कर देना, धैर्य, क्षमा, ममता, दया, हर क्षेत्र की लाजवाब मिसालें इसमें पाई जाती हैं। मगर विडंबना यह है कि 'इस भोलेपन को, इस त्याग को जिसके कारण वे चंद सालों में ही बीमार और बूढ़ी हो जाती हैं–आप क्या कहेंगे? .....थोड़ी भी ईमानदारी से देखने पर यह बात ज़ाहिर हो जाती है कि अधिकारों के प्रति उदासीनता उन्हें कितनी महँगी पड़ती है और पुरुष को कितनी फायदेमंद। [2]

इसकी तुलना में, स्त्रियों का एक दूसरा वर्ग उभरकर सामने आया है, जो शहरी है, कामकाजी है। इनमें अधिकार उच्च मध्यवर्ग से आई हैं, शिक्षा के बल पर इनमें उत्साह है। बाहर की दुनिया से जोड़ने का एक सुख है। वे अक्सर तरोताजा दिखाई देते हैं। उनका सामाजिक चरित्र है। व्यापक क्षेत्र भी उनके पास है। 'अधिकांश सामाजिक सर्वेक्षणों, की, प्रेम, विवाह, यौन–संबंध, परिवार आदि विषयों की सामग्री प्रायः इसी वर्ग से जुटाई जाती है।'[3]

यहाँ भी पति, परिवार, नाते–रिश्तेदार हैं, पर अपनी बदली हुई परिस्थितियों में, पहले वर्ग की स्त्रियों से भिन्न। अतः स्वाभाविक रूप से पारिवारिक कलह, अंसतोष और ज़िम्मेदारियों के यहाँ बिलकुल बदले हुए रूप प्राप्त होते हैं। घोर प्रच्छन्न और अतिशय उत्पीड़क और थोडा–सा गहरे में जाएँ तो एक और महत्त्वपूर्ण बात पता चलती है कि इस समूह की नारियों का शोषण दोहरा–तिहरा है।

नारी–उत्पीड़न के प्रश्न को बारिकी से देखने पर यह अनुभव होता है कि समाज के सभी वर्गो में शिक्षित या अशिक्षित कामकाजी या घरेलू महिलाओं में महिलआएँ भी नारी को प्रताड़ित करने में बराबर की हिस्सेदार हैं। कैसी विडंबनापूर्ण स्थिति है इस सारे घटनाक्रम में महिलाएँ भी महिलाओं के प्रति पुरूषों के समान भूमिका निभाती रही हैं।

इस उत्पीड़न में वे कभी सास के रूप में विद्यमान है, कभी जेठानी और ननद के रूप में और कभी पास–पड़ोस की महिलाओं के रूप में। ...अपने यौवन में सताई गई महिला जब वृद्धावस्था तक पहुँचती है तो अतीत की स्मृतियों में छिपे हुए घावों का बदला वह किसी और से नहीं, अपनी पुत्रवधू से ही लेने लगती है। यह क्रिया सचेतन रूप में हो न हो, किंतु होती है। ......एक मनोवैज्ञानिक तथ्य और भी है। जब नारी को बाह्य संसार से वंचित करके घर की चारदीवारी तक सीमित कर दिया गया तो स्वभावतः उस के मन में घर पर अपना स्वामित्व स्थापित करने की भूख जाग्रत हो गई।'[4]

बीसवीं शताब्दी की महिला कहानीकारों की कहानियों में ऐसी नारियों का भी चित्रण मिलता है, जो अपने पर बिलकुल रोक नहीं लगातीं। वे विवाहित पुरूषों को रिझाकर, विवाहित स्त्रियों से उनका पति छीनकर उन स्त्रियों के साथ अन्याय करती हैं। विवाहित जीवन में तीसरे व्यक्ति की उपस्थिति या उपस्थिति की धारणा शक खड़ा कर देती है। अपने जन्मजात शक्की स्वभाव के कारण अधिक स्त्रियाँ शक की व्याधि से पीड़ित रहती हैं। उन्हें हर दूसरी नारी पर शक होता है। ममता कालिया स्वयं एक स्त्री हैं, पर उन्होंने महिलाओं की इस प्रवृत्ति पर खूब प्रकाश डाला है। जैसे कि अपनी कहानी 'सीट नंबर छह में।'[5]

मन्नु भंडारी की कहानियों में पारिवारिक, सामाजिक समसयाओं के चित्रण की अपेक्षा नारी–मनोविज्ञान का चित्रण अधिक और सफल रूप में हुआ है। वे नारीजन्य ईर्ष्या और नीचता को सहानुभूति का रूप देकर उसे मार्मिकता से प्रस्तुत करती हैं। मोहल्ले में रहकर एक–दूसरे की बुराई में अपना मनोरंजन करने वाली स्त्रियों का सजीव चित्र इनकी 'बच्चे और बरसात और दीवार कहानियों में देखा जा सकता है। [6]

कृष्णा अग्निहोत्री की कहानी 'नारी' की नायिका अपने ऊँचे पद का लाभ नारीजन्य ईर्ष्या के लिए उठाती है। स्वयं प्रेम–वंचित होने के कारण अन्य के प्रेम को सह नहीं पाती और अपने नीचे काम करनेवाली सिंधिया को परेशान करती है।

ममता कालिया की 'पच्चीस साल की लड़की' की नायिका पच्चीस साल की उम्र तक अविवाहिता रहने के कारण मिसेज शर्मा की निगाह में गंदी स्त्री है, जो उसके पति से नाजायज संबंध रखती है। समाज में महिला ही महिला को गिराती है। इस कहानी में टाइपिस्ट देर तक विवाह न होने के कारण समाज में बदनामी पाती है।[7]

पुरूष की तरह सभी क्षेत्रों में समान रूप से कार्य–क्षमता रखने पर भी नारी आज समाज में पुरूष से हेय स्थान ही पाती है। इस दयनीय स्थिति के लिए नारी के प्रति नारी की मानसिकता ही जिम्मेदार है। अक्सर यह भी देखा जाता है कि नारी यदि पुरूष का विरोध कर कुछ कदम उठाती है, तो दूसरी नारी ही उसकी स्थिति का लाभ उठा उसे व्यथित करती है।

शशिप्रभा शास्त्री की 'अग्निरेखा' में पत्नी अपाहिज होने के कारण महत्त्वहीन एक जिंदा लाश है, जो मरने से भी बढ़कर स्थिति में जी रही है–अपनी ही बहन को अपने पति के साथ अपने स्थान पर देख। इस अवस्था में महिलाओं में निहित क्रूरता, निर्दयता की झलक मिलती है।'[8] लेखिकाएँ सास–ननद, जिठानी आदि रूपों में नारी के प्रति नारी के कटु व्यवहार को दर्शाती हैं। मृदुला गर्ग की कहानी 'दो एक फूल' कहानी में शोषित, निर्दोष नारी की दशा का वर्णन करती है। पुरूष अपनी हीनभावना से मुक्ति पाने के लिए पत्नी को मारता–पिटता है। बेचारी महिला के पक्ष में न कोई बोलता है, न पति को रोकता है, बस सब मिलकर हिंसक तमाशा देखते रहते हैं।'[9]

'उस रात वह खूब देर से घर लौटा और आते ही भीतर बैठी शांतम्मा को खींचकर बाहर अहाते में ला पटका और गालियाँ बकते–बकते उसकी पीठ पर दनादन लातें मारने लगा 'चुड़ैल, अभी कितने बच्चों को खाएगी, हरामज़ादी तेरे करम सड़े हैं, तेरा बदन सड़ा है, तेरा पाप फलता है बच्चों की देह पर। हरामजादी! कुलटा डायन!' हर गाली के साथ उसकी आवाज और बुलंद होती गई। हर बार के साथ उसके प्रहार और निर्दयी होते गए। फकीरप्पा की मर्दानगी साबित होती रही। गाज इमारत–सी शांतम्मा उसके पैरों के पास पडी रही। देवर, ननद, ससुर, पड़ोसी सब खड़े–खड़े पिटते देखते रहे। 'दूसरी पत्तल की जूठन घर जाएगी और सड़ांध नहीं उठेगी?' कह सास आराम से दीवार के सहारे टिककर यह हिंसक तमाशा देखती रही।'[10]

ये समाज बड़ा क्रूर है। स्त्री को स्त्री से ईर्ष्या नहीं होती।' शायद यह इस दुनिया का सबसे बड़ा झूठ होगा। स्त्री के अंदर ईर्ष्या–भावना जन्मजात है और विशेष रूप से स्त्री के प्रति। किसी की सुन्दरता पर, ऊँचे पद पर, बच्चों पर, स्वच्छता पर, न जाने किस–किस चीज पर ईर्ष्या करती हैं। अब तो युग ऐसा भी आ गया है कि स्त्री अपने से सुन्दर किसी दूसरे के पति पर भी ईर्ष्या करने लगती है। अपने से अधिक सभ्य पति पर ईर्ष्या करना भी अब उसकी ईर्ष्या में सम्मिलित हो चुका है। नारी ही नारी की शत्रु है। यह इस संसार का सनातन सत्य है। इस सत्य को पुरूष–समाज तो बहुत पहले से जानता है और रही स्त्री–समाज की बात तो वह भी इस ईर्ष्या–भाव से बखूबी परिचित है, लेकिन इस ईर्ष्या–भाव को वह छुपाना और दूसरों को अपना घनिष्ठ बनाकर नीचा दिखाना भी खूब जानती है। चाल–चलन, पहनावा और श्रृंगार भी एक–दूसरी के प्रति ईर्ष्या–भाव जगाने में अहम भूमिका निभाता है।

उषा प्रियवंदा की कहानी 'ज़िदगी और गुलाब के फूल, मोहबंध' में भी इस तरह की भावना दर्शायी गई है। संसार में सुन्दर नारी जेल में जीती है। जब वह आकर्षण का केंद्र बन जाती है सभी अन्य महिलाएँ उसकी दुश्मन बन उससे ईर्ष्या करने लगती हैं–'अचला उसके कानों में पड़ी लंबी–लंबी मोती लड़ियों को देख रही थी। उसकी कल्पना दो कदम आगे बढ़ गई मिस्टर देसाई की आँखों की हसरत, मीनू देसाई की आँखों में ईर्ष्या जो उसे नहीं जानते थे। वह आपस में कानाफूसी करते थे–'वह कौन है, वह सुंदर युवती? वह मिसेज राजन है। –राजन एक लखपति मिल मालिक का लड़का है। वह किसी महारानी की तरह लगती है।' ओठों की लालिमा, मोतियों की आव, दक्षिणी सिल्क की साड़ी से झलकती शरीर की कमनीय रेखाएँ।'[11]

महिलाओं में एक अजीब खोखलापन भी पाया जाता है, जो केवल सतहीपन रखता है। उसका वर्णन कुसुम अंसल की 'मात्र एक महान' कहानी में भी है–'शाम को प्रायः सभी सहेलियाँ सैर को निकलतीं। चिड़ियाघर की दीवार से सटी सड़क के किनारे सभी गप्पें हाँकती–हँसती दो–तीन चक्कर लगा लेती। सैर की सैर और पूरे दिन के समाचारों का अच्छा–खासा आलोचनात्मक वर्णन भी तो हो जाता है। सौरमंडल से भी अधिक प्रकाशित हमारे 'सैरमंडल' में खूब नए–नए वार्तालाप, चिंगारियों से जलती–बूझती उभरकर आती एक उथली मानसिकता जहाँ भावसंवेदना बिलकुल नहीं थी, किसी भी विषय के प्रति कोई संवेदना नहीं थी, जीवन को मात्र सैर–सपाटा समझे बैठी थी, एक उड़ताऊ नजर से संसार को तोलती हुई।'[12]

स्त्रियों में व्याप्त इस हलकेपन को चित्रित करने के लिए, एक भिन्न मानसिकता वाली गंभीर महिला के साथ लेखिका साम्य स्थापित करती है–'सारी बात जान लेने पर भी मेरे मन में सुधा की जगह वैसी ही बनी रही .....अक्षुण्ण....... भिन्न ...... शायद इसलिए मुझे लगा था वह बाहर कम, भीतर के संसार में अधिक रहती है और उन सबसे भिन्न है, जो दूसरों की जिंदगी में झाँकते और गलतियाँ निकालते हैं। ... सहेलियों का नज़रिया इंपोर्टेड वस्तुओं, इधर–उधर के स्कैंडल और चुगलखोरों के सिवा हो भी क्या सकता था, आज के सामाजिक या पारिवारिक जीवन ने उन्हें सिखाया ही यही था और दिया था–पलायनवादी दृष्टिकोण, जो अपने को

अपने से दूर ले जाता है। अधिकतर हम अपने—आपको न देखकर बाहर देखते हैं..... दूर की वस्तुओं को।.......उस भीतर के संसार को जी लेने से बाहर के संसार के सुख—दुख शरीर पर कोई असर नहीं डालते—सुधा ने उसे पा लिया था अवश्य, तभी उसमें एक आकर्षण था अद्भुत जो मुझे बाँध रहा था।'[13]

मृदुला गर्ग की कहानी 'उसकी कराह' की पात्रा सुधा रूग्णावस्था में पति की उपेक्षा की शिकार है क्योंकि वह समय देखकर बीमार नहीं पड़ी। यही नहीं, ऐसे में मरणासन्न पड़ी सुधा को देखकर भी उसकी सास उसकी चिंता या परवाह किए बिना अपने बेटे के लिए नई बहू की तलाश में जुटी है और एक कन्या को वहाँ ला भी देती है—बेचारा, माँ ने उसे अस्पताल से निकल गाड़ी में सवार होते देखकर सोचा, घर के रहते बेघरबार हो गया है। लगता है, सुधा ज्यादा दिन नहीं जिएगी। भगवान की मर्जी। होनी को कौन टाल सकता है। खैर, बीबी जी की ननद भली लड़की है। साथ रहेगी तो मोह भी हो जाएगा। लगता है वह घर और सुमित, दोनों को सँभाल लेगी।'[14]

बीसवीं सदी की महिला लेखिकाओं के पास नारी—मानसिकता की अच्छी समझ है। वे अपनी कहानियों में सदियों से चल रहे नारी के द्वारा ही नारी के शोषण की ओर ध्यानाकृष्ट करती हैं। सास की अनंत शिकायतें बहू की जिंदगी को नरक बना देती हैं। जहाँ महिलाओं में आपसी समझ होनी चाहिए थी, जहाँ सास—बहू के संबंधों में मधुरता होनी चाहिए वहाँ वे संबंध ज्यादा कटु हो गए हैं। 'कपिल के घर आते ही बीजी ने शिकायत दर्ज की, 'तेरी बीबी तो अपने को बड़ी चतुर समझती है। अपने आगे किसी की चलने नहीं देती। खड़ी—खड़ी जवाब टिकाती है। .... कपिल तैश में आ गया, 'तुमने माँ को इंपरफेक्ट कहा। तुम्हें शर्म आनी चाहिए। तुम हमेशा ज्यादा बोल जाती हो और गलत भी।'[15]

कितनी ही सुंदर स्मार्ट, व्यवस्थित खूबसूरत महिला हो दूसरी महिला उससे किसी न—किसी वजह से ईर्ष्या का कारण ढूँढ ही लेती है। उसकी मानसिकता इतनी गिर जाती है कि वह मरती हुई बहू के लिए दवाइयाँ या दुआएँ नहीं जुटाती, बल्कि उसकी मृत्यु के पश्चात् बेटे के घर को उजड़ने से बचाने के लिए चिंतित है। सुमित की माँ इसी तरह के भावों से भरी सुधा के मरने का इंतजार कर रही है ताकि वह दूसरी पत्नी लाकर उसका घर बसा सके। उसने इसकी व्यवस्था भी कर ली है—'लगता है वह घर और सुमित दोनों को सँभाल लेगी।'[16]

कुसुम अंसल की नायिका सुधा एक व्यवस्थित सुंदर और सभ्य स्त्री है, लेकिन समाज की घृणा केवल इसलिए है कि वह एक रखैल है, इस तरह की घृणा करने से पहले समाज भूल जाता है कि उसे रखैल बनाया है समाज ने ही और हर कार्य के पीछे स्त्री का हाथ तो होता ही है। कोई भी उसकी तरफदारी करनेवाली नहीं, मात्र नायिका को छोड़कर। दूसरी औरतें उसकी जिंदगी में झाँककर उसकी ग़लतियाँ ही निकालती है। सोच लेती है कि— 'वह कुछ भी कहे सीता—सावित्री नहीं हो सकती, उसके बच्चे हमारे बच्चे की बराबरी नहीं कर सकते, रखैल के बच्चे अपने घरों में नहीं ब्याहे जा सकते।'[17]

एक युग ऐसा भी था, जब पत्नी सचमुच ही दासी की तरह रहती थी। युगों तक वह पर्दे की चारदीवारी और समाज के रीति—रिवाजों में कैद रही है। किंतु बदलते युग ने बदलते दृष्टिकोण को जन्म दिया, नारी की आकांक्षाओं और उमंगों ने नारीपक्ष को एक नया मोड़ दिया है, नई दिशा दी है, उसे नई शिक्षा मिली है और जीवन को सही मायने में इच्छा भी मिली है। आज जब उसने स्वच्छंदता के वातावरण में साँस ली है, घर के बाहर का जीवन उसे प्रिय लगने लगा है।

दसवें दशक में या यूँ कहें कि अंतिम दशक की लेखिकाओं की कहानियों में आज भी अधिकतर महिलाएँ हमें ऐसी मिलती है, जो सर्वसंपन्न होने पर भी विवश हैं। वे पुरूषों की दृष्टि में अब भी निम्न हैं। लेकिन क्योकि उनकी मानसिकता तेजी से बदल रही है, वे समाज से तथा पुरूषो से उपने प्रति उदार दृष्टिकोण की अपेक्षा रखती हैं। आपसी संबधों में दरार अक्सर इसलिए आती है कि पुरूषों की मानसिकता अभी उतनी तीव्रता से नारी के प्रति परिवर्तित नहीं हो पाई है। लेखिकाओं का महिलाओं के प्रति भी स्पष्ट संदेश यह है कि नारी की मानसिकता तभी बदल सकती है, जब उसे शिक्षा प्राप्त हो, जब वह अपनी तथाकथित 'नारी—सुलभ कमजोरियों' पर विजय पा लेगी और स्वयं 'नारी द्वारा नारी का शोषण' समाप्त करने की सोचेगी। 'शिक्षित होने पर मनुष्य इनफीरियोरिटी काम्प्लेक्स का शिकार नहीं होता। इस काम्प्लेक्स से मुक्त स्त्री न तो खुद आग में जलती है और न दूसरों को जलाती है।'

कहानियों में ऐसे उदाहरण अपवादस्वरूप ही पाए जाते हैं, जहाँ नारी दूसरी नारी का दुख समझती है। मालती जोशी की 'प्रतिदिन' में सास—बहू के संबंध कटु होन पर भी प्रसव—पीड़ा के समय पति से अधिक मधुर है, क्योंकि वह पीड़ा दोनो के लिए समान है तथा पुरूष से अलग करती है।

बड़ी कुशलता के साथ मालती जोशी सीमित मध्यवर्गीय परिवेश में साँस लेती नारी का चित्रण करती है, जो कभी झुँझलाती, बौखलाती है, कभी ईमानदारी के साथ अपने प्रश्नों अभावों के साथ जूझती है, तो कभी समझौता भी करती है। इसी समस्या पर डॉ. विजय द्विवेदी ने कहा है—'आज की नारी अपने चतुर्दिक परिवेश से, अंतर्राष्ट्रीय माहौल से अपने को जोड़ना चाहती है, किंतु संस्कारवादिता, पंरपराबद्धता उसके आड़े आ रही है। वह इनके किसी मध्यम मार्ग की खोज अथवा समझौता नहीं कर पा रही है।

यह एक विडंबनापूर्ण स्थिति है। अतः अपने ही बँधे–बँधाए परिवेश में स्वयं को साहसी, क्रांतिकारी अथवा स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान करने की बात करना कोई मायने नहीं रखता।’[19]

‘कोहरे के पार’ कहानी में मालती जोशी की नायिका शीला एक अविवाहिता कामकाजी महिला है, जो शिक्षा तथा अर्थिक स्वावलंबन के कारण अब ‘समर्पित नारी’ से ऊपर उठ चुकी है। लेकिन अनायास उसकी बहन की मृत्यु के उपरांत उठ खड़ी हुई स्थिति में उसका मन कुहरिला हो जाता है। उसकी दिवंगत बहन के दो लड़के और एक लड़की है। दोनों लड़के तो बड़े हैं, लेकिन लड़की स्वाति बहुत ही छोटी है। उसकी बहन ने अतिंम क्षणों में कहा है कि ‘शीलू को स्वाति की माँ बना लेना।’ इसलिए बहन के ससुराल वालों के साथ उसकी माँ, भैया, भाभी आदि लोग भी चाहते हैं कि वह अपने जीजा से शादी कर ले। एक ओर मृतात्मा की अंतिम इच्छा और स्वाति के प्रति ममता, दूसरी ओर उसका व्यक्तित्व–बोध, विवाह के प्रति उसका अपना व्यक्तिगत दृष्टिकोण, इस रिश्ते का प्रतिवाद करने को उसे प्रेरित करते हैं। वह एक तरफ की कोहरेमयी मानसिकता में फँसकर अनिर्णय की स्थिति की शिकार है। वह कहती है–‘मैने अब ज़िंदगी को एक नए नज़रिए से देखना सीखा है। मेरे जीने का ढंग बदल गया है। मेरी सोच की सीमाएँ फैल गई हैं। अपने आस–पास मैंने रंगो की एक नई दुनिया ईजाद कर ली है। चेतना के स्तर पर बहुत आगे बढ़ आई हूँ। वह महसूस करती है कि वह उस व्यक्ति के साथ गुज़ारा नहीं कर सकती, जिसकी दुनिया घर और दफ्तर तक ही सीमित हो और जिसकी ज़िंदगी रोज़मर्रा की रटी–रटाई धुन में चले। संभवतः इसलिए अंत में सोच–समझकर फ़ैसला कर लेती है कि मात्र भाववेग में बहकर जीजा जी से शादी करना अपने व्यक्तित्व का ही नहीं, पूरे भावी जीवन को विध्वंस करना होगा। अतः वह अपने जीजा को लिखती है–‘दीदी ने चाहा था मैं स्वाति की माँ बनूँ। मुझे सहर्ष स्वीकार हैं दीदी की बात टालने का प्रश्न ही नहीं उठता। आप निश्ंचित होकर उसे मुझे सौंप दें। उसके बाद आप स्वतंत्र है। आपकी बीवी बनने का सौभाग्य जिसे प्राप्त होगा, वह मुझे दीदी की तरह प्रिय होगी।’[20] मगर शीला निश्चित रूप से संतुलित मन से कर्त्तव्य को अलग, भावुकता को अलग रखकर समर्पित नारी से ऊपर उठकर बँधे–बँधाए परिवेश में रहकर भी, साहसी ढंग से एक तरह का मध्यम मार्ग अपनाती है।

नारी की बदलती मानसिकता का चित्रण कुसुम अंसल की कहानी ‘मात्र एक मकान’ में देखने को मिलता है। निर्मल सुधा की निंदा करती है कि वह समाज में किसी की रखैल बनकर रहती है, इसलिए उसके बच्चे अच्छे घरों में नहीं ब्याहे जा सकते .... कि सुंदर नगर के परिवारों में से तो कोई नहीं जाएगा। क्योंकि उन्हें आखिर समाज में रहना है, अपनी बेटी की शादी भी तो करनी है। पर वीना को ये किसी पुरानी सदी की बातें लगती हैं। वीना उदार, प्रौढ़, उच्च विचार रखनेवाली महिला है। वह यह मानकर चलती है–व्यवहार अपनी जगह, जीवन अपनी जगह, व्यक्तित्व अपनी जगह जोड़े भी जा सकते हैं। उन्हें अलग–अलग रखकर परखा भी जा सकता है। उसे तो सुधा सब सहेलियों से अधिक गंभीर, संवेदनशील और समझदार लगती है, हर पल जैसे वास्तविता उसे एक सोच देती है और वह उस सोच को ठीक से पकड़ती है .... सुधा अपनी भूमिका में सबसे व्यवस्थित, स्मार्ट और खूबसूरत है–उसके इन्हीं गुणों को देखकर वीना को लगा था, वह बाहर कम भीतर के संसार में अधिक रहती है और उन सबसे भिन्न है, जो दूसरों की ज़िंदगी में झाँकते और ग़लतियाँ निकालते हैं। वीना के अनुसार सैरमंडल की नारियाँ सुधा से इसलिए जलती है कि उसकी तुलना में वे सतही, हलकी–सी लगती है ‘सहेलियों का नजरिया इंपोर्टेड वस्तुओं, इधर–उधर के स्कैंडल और चुगलख़ोरी के सिवा हो भी क्या सकता था, आज तक के सामाजिक या पारिवारिक जीवन ने उन्हें सिखाया ही यही था और दिया था एक पलायनवादी दृष्टिकोण, जो अपने को अपने से दूर ले जाता है।’[21] इसके विपरीत सुधा और वीना के बीच एक प्रौढ़ गाढ़ा संबंध स्थापित हो जाता है, ‘हम लोग इधर–उधर की बातें नहीं कर पा रहे थे, अतः अपनी भीतरी चारदीवारी तक ही रूके रहे।’[22]

परंपरागत दमघोटू वर्जनाओं से घिरे परिवारिक संबंधों की निस्सारता को उजागर करती हुई लेखिकाएँ नए स्वस्थ संबंधों की नींव तलाशती हैं, जिसके लिए नारी–मानसिकता में परिवर्तन बहुत ज़रूरी है। उनकी कहानियों में खुले परिवेश में पली लड़कियाँ शादी के बाद छुई–मुई का मुखोटा पहन नहीं पाती है। इसलिए अक्सर नारी को समाज की आलोचना का निशाना बन जाना होता है।

शर्म, हया, मर्यादा, दिखावटी आदर–भाव, बड़ों को तथाकथित सम्मान आदि पुराने रिश्तों के आधार उनके दांपत्य जीवन में घुटन भर देते हैं। ‘स्नेह बंध’ कहानी में नीता जैसी खुले मिजाज़ की लड़की लाकर मालती जोश एक नया संदेश देना चाहती हैं। नीता विवाह के पूर्व पहली बार जब अपनी होनेवाली सास से मिलने जाती है, तब वह न तो झूठ–मूठ की शालीनता को ओढ़ती है और न ही झूठी मर्यादा को, शादी के बाद भी मेहमानों के चले जाने के बाद वह केवल नई दुल्हन के वस्त्र ही नहीं उतार फैंकती, बल्कि सभी झूठी ओढ़ी हुई बहू की मर्यादाएँ भी उतार फेंकती है। परिवार के सभी सदस्यों के साथ हिल–मिल जाती है। उसकी स्वाभाविक, उमंग–भरी उन्मुक्तता से सभी खुश हैं। केवल सास को उसकी हरकतें बचकानी और बेहया लगने लगती हैं। लेकिन जब वही लड़की सास–ससुर के विवाह की वर्षगाँठ मनाती है और ससुर की भयावह बीमारी की कठिन घड़ी में पति की अनुपस्थिति में भी आत्मेयता के साथ अपने सेवाभाव से सबको आश्वस्त करती है, तब सास एंव बहू का रिश्ता माँ–बेटी के रिश्ते में बदल जाता है।

उषा प्रियवंदा की अचला भी 'मोहबंध में प्रतिशोध से उबरने की विशिष्टता दिखाकर नारी की बदलती मानसिकता का सुंदर उदाहरण देती है। अचला अर्थशास्त्र की प्राध्यापिका है, अविवाहिता है, संवेदनशील है। प्रेम में धोखा खाई अचला स्त्री–जीवन के किसी मोड़ पर अपनी सहेली के पति के संपर्क में आ जाती है। यह वही सहेली है, जिसके कारण अचला का विवाह उसके प्रेमी से नहीं हो सका था। बेहद अकेलेपन में जीनेवाली अचला जिस स्त्री के कारण अकेलेपन के शाप को लेकर जी रही है, उसी स्त्री के दांपत्य जीवन को नष्ट करने का साहस नहीं कर पाती। अचला चाहती तो अपनी सखी नीलू से प्रतिशोध ले सकती थी, परंतु वह ऐसा नहीं करती। प्यार में धोखा होने पर क्या लगता है यह उसने जिया था, जाना था, भोगा था। आज भी उसी पीड़ा को भोग रही है। उसने जो दुख झेला है, वह दूसरा कोई झेले, ऐसा अचला को अच्छा नहीं लगता। वह एक नारी है और वह नारी की स्थिति को समझती है। भले ही वह प्रतिशोध की अग्नि में झुलसती रही, लेकिन प्रतिशोध ले नहीं पाती। अचानक जब राजन उसके इतना निकट था उसके आगे दो आँसू भरी आँखें आ गई, उसे लगा बाँसों की चुभीली पत्तियों पर लेटकर कोई अभी–अभी रोया है। उसकी सिसकियाँ अब भी वातावरण में भटक रही हैं। असीम सुख के क्षण में भी अचला ने स्पष्ट रूप से अनुभव कर लिया है कि इस मोहबंध को तोड़कर उसे जाना ही है, क्योंकि वे भीगी आँखे उसकी अपनी हैं।'[23]

ऐसी नायिकाओं के माध्यम से महिला कहानीकारों ने नारी–मानसिकता को विशिष्टता के साथ उद्घाटित किया है। आज की नारी में अहं का उदय होने से उसके निर्णय में दृढ़ता आ रही है।

## संदर्भ

1. डॉ. रेशमी रामदोनी, समकालीन हिंदी–लेखिकाओं की कहानियों में अभिव्यक्त बहुआयामी विद्रोह, पृ. 235
2. आज्ञात हिंदू औरत, सामंती उपदेश निवेदन, अंश, पृ. 28
3. वही, पृ. 28
4. डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल, नारी–उत्पीड़न की कहानियाँ, 1986
5. ममता कालिया, सीट नंबर छह, पृ. 19
6. मन्नु भंडारी, मेरी प्रिय कहानियाँ, अकेली कहानी के परिपेक्ष्य में
7. ममता कालिया की कहानी पच्चीस साल की लड़की के विषय में
8. शशिप्रभा शास्त्री की कहानी, अग्निरेखा के विषय में
9. मृदुला गर्ग, दो एक फूल के विषय में
10. मृदुला गर्ग, टुकड़ा–टुकड़ा आदमी, पृ. 9
11. उषा प्रियवंदा, जिंदगी और गुलाब के फूल, मोहबंध, पृ. 18
12. कुसुम अंसल, प्रतिनिधि कहानियाँ, मात्र एक मकान, पृ. 83
13. वही, पृ. 51
14. मृदुला गर्ग, टुकड़ा–टुकड़ा आदमी, उसकी कराह, पृ. 123
15. ममता कालिया, बोलने वाली औरत, पृ. 199
16. मृदुला गर्ग, टुकडा–टुकडा, आदमी, उसकी कराह, पृ. 123
17. कुसुम अंसल, प्रतिनिधि कहानियाँ, मात्र एक मकान, पृ. 51
18. तसलीमा नसरीन, नष्ट लड़की, पृ. 86
19. डॉ. माधव सोनटक्के, समकालीन परिवेश और प्रासंगिक रचना संदर्भ प्राचार्य अशोक हज़ारे।
20. मालती जोशी, कोहरे के पार, पृ. 131
21. कुसुम अंसल, प्रतिनिधि कहानियाँ, मात्र एक मकान
22. कुसुम अंसल, प्रतिनिधि कहानियाँ, मात्र एक मकान
23. उषा प्रियवंदा, जिंदगी और गुलाब के फूल, पृ. 26